पहला – अध्याय

--: नारी के विविध रूप :--

नारी का स्वरूप :-

"एकोऽहं बहु: स्याम" कहकर उसी पुरुष ने अपने भीतर की नारी को, प्रकृति को जन्म दिया। वह प्रकृतिरूपी स्त्री परपुरुष की इच्छा का प्रतिफलन है॥ ईश्वर ने उसकी निर्मिति से अपने जीवन की निरसता को दूर किया, एकाकीपन को हटाया। आज "नारी" शब्द में विश्व की कोमलता, माधुर्य और ममता भरी हुई है॥ इस सृष्टि का आधार नारी है। उसकी निर्मिति इसी कारण सोद्देश्य हुई है। महान योद्धा, श्रेष्ठ वैज्ञानिक प्रथम पंक्ति के विद्वान, लेखक, कवि और मनीषी नारी की गोद में पलकर ही बड़े हुए हैं। वह शुचिता का प्रतीक है। अत: सारे संसार में स्त्री की महिमा सभी कालों में स्वीकृत की गई है।

प्राचीन काल से ही नारी ने अपनी कोमलतम भावनाओं से पुरुष का जीवन मधुमय करने का प्रयास किया है। पुरुष के लिए अपना पूरा जीवन निछावर करनेवाली नारी पुरुष के लिए प्रेरणादायी शक्ति बन गई है। कोमलता, सौन्दर्य और त्याग-इस त्रिवेणी संगम से नारी ने तो धरती पर स्वर्ग की अवतारणा की है। स्त्री और पुरुष के सहज सुलभ आकर्षण से प्रकृति सृजनशील होती रही। सृष्टि के विकास में तो नारी का स्थान सर्वोपरि रहा है। मातृत्व की पीड़ा में सुखद आनन्द मानकर नारी ने सृष्टि का सृजन किया और विश्व-मंगल की कामना रखी। इसी कामना के कारण नारी, त्याग और सेवा का प्रतीक बन गई। इसीलिए नारी की महिमा गाते समय राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्तजी ने कहा है -

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही है कहानी,
आंचल में है दूध और आँखों में पानी।

अपनी लघुता में भी महत्ता, शीतलता में भी जीवन की ऊष्मा तथा सुन्दर तन में भी शिवम् छिपाये रहनेवाली वह नारी, सदा से समाज का ही नहीं, साहित्य का भी प्रेरक तत्व रही है। युगों से कवि जीवन की इस उष्मामयी, उल्लासमयी एवं अनुरागमयी अरुण किरण को काव्यजल का अर्घ्य चढ़ाते रहे है, कभी आसक्ति से तो कभी अनुराग से, कभी आकर्षण से तो कभी आदर से। जिस प्रकार नन्हीं - सी अरुण - किरण के संस्पर्श से जल-थल, तल-अतल,

जड़-चेतन कोई भी अछूता नहीं रह पाता, इसी प्रकार समाज का प्रत्येक कोना साहित्य की प्रत्येक विधा नारी से शून्य नहीं है।

* नारी के विविध रूप :-

* माता :- नारी के विभिन्न रूपों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप मातृत्व है। वेदों में माता को पृथ्वीस्वरूप कहा गया है। पृथ्वी के समान ही वह सन्तान धारण करती है। उसका लालन - पोषण करती है और आजीवन उसके सुख की कामना करती है। स्त्री के विकास की चरमसीमा उसके मातृत्व में ही चरितार्थ होती है।[1]

मातृत्व में नारी की महत्ता सम्पूर्णत: निहित है। निष्काम सेवा का चरम आदर्श नारी में प्रतिष्ठित हुआ है। नारी हमेशा से आदर का विषय रही है। माता को इस पद से भ्रष्ट कर सकना किसी के बस की बात नहीं है। संभवत: जब परिवार और समाज का भी निर्माण नहीं हुआ था तब से संतान का उत्तरदायित्व माता पर ही रहा है। पिता की अपेक्षा माता संतान की रक्षा में अधिक समर्थ होती है। प्रकृति की इस सहज भावना ने ही माता को सर्वोच्च पद प्रदान किया है। माता कोमलता, समर्पण, प्रेम, ममता इस दिव्य संपत्ति की अधिकारिणी होती है। वह अपनी अहंता और स्वत्व को अपने पति और संतान पर निछावर कर देती है। नारी जीवन की चरम सार्थकता उसके मातृत्व में मानी गई है। धरती के समान उसकी वह प्यास शाश्वत है। इसके बिना अपूर्णता की अनुभूति उसे अनेक कष्ट सहकर भी पूर्ण बनाने की प्रेरणा देती है। मातृसत्ताक युग में माता समस्त व्यवस्था की केंद्रबिंदु थी।[2]

समाज में माता की इस अधिकारपूर्ण स्थिति अनुप्राणित होकर ही मानव ने अदृश्य शक्ति की कल्पना भी माता में की थी। यद्यपि कालप्रवाह में नारी का गौरव कई बार विषम परिस्थितियों के थपेड़ों से टकराकर चूर-चूर हो गया किन्तु फिर भी नारी के मातृत्व की गरिमा सदैव अक्षुण्ण बनी रही।

प्रेम और वात्सल्य नारी हृदय तरंगिणी के दो कूल है। प्रकृति ने नारी को सुकोमल बनाने के साथ-साथ उसे मातृत्व के कठोर कर्तव्य को वहन

करने का वरदान भी दिया है। नारी का प्रेयसी रूप यदि उसके जीवन का आकर्षणयुक्त मधुर पक्ष है, तो मातृत्व मंगलकारी पुनीत पक्ष। ममता की मूर्ति, स्नेह एवं शुचिता की साकार प्रतिमा, संवेदना की स्रोतस्विनी, त्याग की तरंगिणी माँ अनादि काल से ही स्तुत्य रही है। नारीत्व के चरम विकास को प्राप्त, यह अतुलनीय मानवी, कवि-हृदय के स्नेह, सम्मान एवं श्रद्धा की अधिकारिणी रही है। उसके पुनीत स्वरूप को देखकर राष्ट्र की कल्पना भी माता के रूप में की गई है। इतना ही नहीं, जन्नत भी उसके पैरों के नीचे माना गया है -

"ज़ेरे क़दमें वाल्दा फ़िर दौसेबारी॥"

भारतीय संस्कृति में भी "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" का स्वर मुखरित कर हमारे ऋषियों ने नारीत्व के इस चरम विकास के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है।[2]

नारी-हृदय में सुप्त "माँ" विवाह के पश्चात् शीघ्र ही सजग हो उठती है और वह गर्भकाल की तथा प्रसव की पीड़ा को सहने के लिए तत्पर होकर एक नवजात शिशु से अपनी गोद भरकर जीवन को सार्थक बनाना चाहती है। मातृत्व के अभाव में नारी जीवन असंतोष एवं मानसिक विकृतियों से भर जाती है। कुंवारी नारी भी इस प्रकृतिदत्त अनुभूति का मर्म जानती है। इसीलिए गोद भर जाने पर एक भिखारिन भी स्वयं को बंधवा महारानी से हीन नहीं समझती। संभवत: इसी एक सुख के कारण वह जीवन के सारे विष घूंट हँसते-हँसते पी जाती है।

वस्तुत: सच्चा मातृत्व विशाल व्यापक तत्व है, जो सीमातीत होता है। सच्चे मातृत्व में अन्धा मोह नहीं होता जो केवल स्वार्थ देखता है। उसमें तो विशुद्ध प्रेम होता है और वह त्याग की धरा पर ही पनप सकता है। माता यह भी चाहती है कि उसकी सन्तान यशस्वी बने, उसके दूध को अमृत सिद्ध करे इसी में उसके मातृत्व की सफलता है। इसी कारण एक अशिक्षित माँ भी अपनी सन्तान का नाम एवं सम्मान देखने को लालायित रहती है। उसे अपनी सन्तान की प्रशंसा सुनकर जो अपरिमित प्रसन्नता होती है उतनी कदाचित किसी को भी नहीं, क्योंकि उसी में उसका "स्व" निहित रहता है। इसके अतिरिक्त सच्चा मातृत्व केवल अपनी सन्तान का ही नहीं, अपितु धरती पर विचरनेवाले प्रत्येक बच्चे का क्रन्दन सुनकर द्रवित हो जाता है। उसकी ममता एवं करुणा की सीमाएँ इतर

व्यापक होती है कि उसमें समस्त विश्व समा जाता है।

पत्नी :- नारी का यह और एक महत्वपूर्ण रूप है। जीवन के रंगमंच पर जब नारी पत्नी के रूप में पुरुष की प्रेरणा, स्फूर्ति एवं पूर्ति बनकर आती है, तो उसका स्वरूप और भी सुन्दर, भावतरल, कोमल एवं त्यागमय बन जाता है। विवाह के पश्चात् नारी जब पत्नी रूप को प्राप्त करती है, तब उसके जीवन में ऐसी अनुपम बेला आती है, जिसमें स्वतः ही उसका हृदय मधुर भावनाओं के चिर-संचित कोष को किसी के चरणों में निछावर कर देने को मचल पड़ता है। उस समर्पण में विवशता नहीं, आत्मतोष होता है, पछतावा नहीं, गर्व होता है तथा सुख के साथ एक संन्तोष की उपलब्धियाँ भी निहित रहती है।

भारतीय परिवार में नारी का पत्नी रूप भी विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वह अपने वैयक्तिक गुणों के कारण परिवार को सुखी बना सकती है उसी तरह दुखी भी बना सकती है। सिर्फ परिवार ही नहीं बल्कि समस्त विश्व की सुख शांति की वह अधिष्ठात्री है। उसके ही आँचल मे मानवता की परवरिश होती है। वह अपनी ममता, समता, उदारता और त्याग आदि कोमल भावनाओं का सजग मानव को विश्वबंधुत्व का पाठ पढ़ा सकती है। उसके संबंध में कहा गया है कि "गृहिणी सचिवः सखी मित्रः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।"[४] अर्थात पत्नी गृहिणी, गृहकार्य में सखी, एकांत में मित्र और ललित कलाओं में प्रियशिष्या होती है।

नारी न केवल पारिवारिक सुव्यवस्था का ही ध्यान रखती है और न केवल पुरुष की तुष्टि का साधन बनती है। बल्कि उसे समुचित मार्ग भी दिखाती है। प्राचीन काल से हमारे देश में नारी के लिए पतिव्रत आदर्श माना गया है। विश्वास किया गया है कि पतिव्रत्य धर्म मे मानवता की शांति-व्यवस्था निहित है। विवाह के पश्चात् नारी पत्नी रूप प्राप्त करती है और हृदय की मधुर भावनाओं का कोष पति चरणों पर निछावर करती है। इसके साथ ही वह अपने सामने कर्तव्यों की एक लंबी कतार सी खड़ी पाती है। जिनका वह स्वागत करती है । उन कर्तव्यों को निभाकर वह परिवार एवं समाज के मन मे गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। वह अपने साथ ऐसा माधुर्य लेकर आती है कि पुरुष को भी गृहस्थी के बंधन में बाँध पाने में सुख और गौरव अनुभव करती है। पत्नीत्व के अभाव में उसके भीतर की समस्त कोमल एवं मधुरतम कामनाएँ

कुंठित रह जाती है। इसीलिए शायद स्त्री का सुंदरतम निवास पति का हृदय है। जो स्त्री विवाहित होकर भी इस स्थान को प्राप्त करने में असफल रह जाती है वह अपने जीवन में एक रीतापन महसूस करती है ।

पत्नी को अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिए सहनशील होना पड़ता है। वस्तुत: नारी की यह स्वभावजन्य सहनशीलता उसके संस्कारों की देन है। वह जिस वातावरण में पलती है, जो कुछ बचपन से देखती सुनती है, वही उसके जीवन का तत्व बनकर उसके रक्त में घुल जाता है। पुरुष चाहे कहे या न कहे नारी स्वयं अनुभव करती है कि पत्नीत्व उसके जीवन का लक्ष्य है, सिद्धि है । पत्नीत्व के अभाव में उसे लगता है जैसे उसके अन्तर की समस्त रंगीन भावनाएँ और मधुमय कामनाएँ कुंठित ही रह जायेंगी।

एक आदर्श पत्नी सदा अपने पति चरणों में ही रहना चाहती है॥ उसका समस्त जीवन पति की प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करते करते ही व्यतीत हो जाता है, क्योंकि पति की प्रसन्नता में ही वह अपना सच्चा सौभाग्य एवं सुख निहित मानती है। पति को सर्वस्व देकर भी वह प्रतिदान में कुछ नहीं चाहती। जहाँ तक पत्नी के अन्तर - विश्वास का प्रश्न है, उसका विश्वास अटूट होता है, गगन - सा व्यापक होता है और उसके जीवन का प्रत्येक पक्ष उससे अनुरंजित रहता है। उसे अपने पति प्रेम पर विश्वास और अपने पतिव्रत के बलपर अटूट विश्वास होता है। इतना ही नहीं, हमारे यहाँ तो पतिपरायणा पत्नी के लिए पति ही नहीं, उससे सम्बन्धित अन्य व्यक्ति भी आदरणीय, पूज्य एवं पुनीत होते है॥ सास, श्वसुर तो पूज्य है ही, किन्तु सौतन से भी उसेय बनाकर ही चलना पड़ता है।

इसतरह नारी के जो प्रमुख रूप है उसमें पत्नी रूप अत्यंत महत्वपूर्ण है॥ जो उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है और उसमें कामयाब होना ही उसके जीवन की सार्थकता मानी जाती है।

** बहन :- शैशव - सरिता की सह - प्रवाहिनी, स्नेह सजला बहन का भी जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। वात्सल्य के प्रांगण की अनेक अश्रु - हासमयी क्रीडाओं की मृदुल संगिनी बहन का सामीप्य अल्पकालीन होते हुए भी संवेदना

के सूत्रों से सदा के लिए गुंथ जाता है। बहन छोटी हो तो भाई का अमिट स्नेह पाने की अधिकारिणी होती ही है और बडी हो तो स्नेह के साथ आदर पाती है। यह स्नेह संबंधा अत्यंत पवित्र और निर्मल माना गया है। तथापि मानव जीवन के प्रभातकाल में वह संबंध नगण्य था। किंतु सभ्यता के विकास के साथ हमारे हिन्दु समाज में यह संबंध बहुत ही व्यापक और उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित रहा है।। भारतीय समाज में बहन शब्द का संबोधन इतना परिचित एवं व्यापक है कि यह नारी के साथ पुरुष के सहज संबंध का प्रतीक बन गया है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक उस पवित्र स्नेह संबंध का वर्णन देश की दशा पाया जाता है। आधुनिक काल की बहन भाई को अपनी ही नहीं बल्कि देश की रक्षा की याद दिलाने के लिए भी राखी भेजती है। यही राखी भारतमाता की परतंत्रता की बेडियाँ काटनेवाली चुनौती भी बन गई थी।।

पुरुष के अन्तर में वासना के मैल से मुक्त जो सात्त्विक स्नेह तत्व है, उसपर तो बहन का अधिकार सम्भवत: प्रेयसी से भी अधिक है। यह स्नेह निश्चल है, चिर नूतन है, इससे मनुष्य गिरता नहीं, अपितु प्रगतिपथ पर अग्रसर होने का बल पाता है, जिसमें मोह का बंधन नहीं त्यागमयी मुक्ति है, जो स्वार्थ का नहीं विसर्जन का पाठ पढ़ाता है।

*** पुत्री :- जीवन के विकासक्रम को दृष्टिगत रखते हुए यदि हम नारी जीवन के तीन चित्र अंकित करे तो कन्या उसका प्रथम चित्र है, जिसमें वह पुत्री के रूप में पहचानी जाती है। जीवन के इस प्रथम सोपान से ही नारी की सामाजिक स्थिति का भी बोध होने लगता है। जहाँ तक पुत्री की महत्ता का प्रश्न है, अँग्रेजी लेखक अलेग्जेन्डर स्मिथ के शब्दों को विस्मृत नहीं किया जा सकता ।। उनके शब्दों मे"जब मैं तुझे देखता हूँ, तो ऐसा मालूम होता है जैसे परमात्मा के सामने खड़ा हूँ। तू उनकी अन्तिम कारीगरीहै। तू वर्तमान की देवरानी है। तू चाँदी की सरिता है। तू पृथ्वी का प्रकाश है। तू हृदय की शान्ति है।"[5]

यद्यपि इस कथन में अतिशयोक्ति अवश्य जान पड़ती है किन्तु इससे अभावोक्ति नहीं किया जा सकता। जहाँ पुत्री अपना बचपन, यौवन बिता देती हैं उसे ही वह घर छोडकर पति के द्वार चले जाना पड़ता है।। वस्तुत: पुत्री के

लिए पिता का चिर-परिचित घर छोड़कर अनजाने घर में जीवन भर के लिए चले जानेवाला पत्र जितना सत्य है, उतना विचित्र भी। माँ-बाप, बहन -भाई से बिछुड़कर अपने पति के घर गई हुई पुत्री का पत्र भी माँ एवं पुत्री की प्रेमजन्य वियोग व्यथा को ही व्यक्त करता है॥ अत्यधिक वियोग के कारण ही सबकुछ होते हुए भी नये घर में उसका मन नहीं लगता॥ माँ का ही नहीं, पिता का पुरुष - हृदय भी पुत्री की विदाई - वेला में अपनी विवशता पर विदीर्ण होने लगता है। पुत्री की विदाई भी एक विचित्र विडम्बना है। उसके विवाह से माता - पिता के दायित्व का भार जितना हल्का हो जाता है, हृदय उतने ही सूनेपन से भर जाता है॥

माता - पिता के हृदय में पुत्री के लिए अमित स्नेह भरा होनेपर भी सामाजिक विषमता का बोझ उनके मनपर बना रहता है। दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई दहेज की बुरी प्रथा के कारण नारी के सम्मान में आग सुलगा दी और उसकी ज्वालाओं में पुत्री का समस्त सम्मान एवं गौरव नष्ट हो गया है।

अपने पिता के घर में बड़ी लाड़-प्यार से पोषित लड़की का जन्म इस दहेज - प्रथा के कारण अभिशाप बन गया है और उसका जीवन घोर पाप॥ हमारे समाज में उसकी स्थिति इतनी हीन हो गई की अपने पितृ - गृह में उसे वैसे ही स्थान मिलता है, जैसे किसी दुकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है, जिसके रखने और बेचने दोनों ही में दुकानदार को हानि की संभावना रहती है।[६]

यथासमय विवाह न होने से सामाजिक वातावरण के कारण पुत्री को अपना जीवन भार लगने लगता है। इस व्यथा को वह पशुवत् मूक रहकर सहन तो कर लेती है, किन्तु संस्कारवश व्यक्त नहीं कर सकती। इतना ही नहीं अपनी इस दुर्बलता के कारण माता - पिता का दुःख या पीड़ा उसे भीतर ही भीतर खोखला बना देता है और इस असहाय स्थिति से मुक्ति पाने के लिए कई लड़कियाँ आत्महत्या तक कर लेती हैं ॥ [७] इस दयनीय अवस्था के लिए माता - पिता या सामाजिक वातावरण दोषी रहा हो किन्तु उसका दण्ड वह अकेली ही सहती है। इस दोषपूर्ण सामाजिक विधान के कारण, पुत्र के समान ही प्यार से गोदी में सुलाकर पाली गई पुत्री बड़ी होने पर माता - पिता के

मनपर एक बोझ बन जाती है। निर्दोष होने पर भी वह स्वयं को बोझ समझ कर मन ही मन जलने लगती है।

** प्रेयसी एवं प्रेमिका :- नारी का यह रूप पूर्वकाल से आजतक महत्वपूर्ण माना गया है॥ प्रेयसी एवं प्रेमिका रूप में कल्पना की जो उन्मुक्त उड़ान और भावनाओंकी जो स्वच्छन्द गति रहती है, वह पत्नी रूप में कर्तव्य की बेड़ी में आबध्द हो जाती है॥ प्रेयसी एवं प्रेमिका का प्रेम, जीवन का अमिट सत्य होने पर भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं माना जाता किन्तु पत्नी स्पष्टतया एक सामाजिक सम्बन्ध है। जो भी हो प्रेमिका का प्रेम सामाजिक मान्यता के अभाव में भी अपनी सूक्ष्म अन्तर शक्तियों के सहारे पलता, पनपता एवं जीवित रहता आया है। प्रेयसी के प्रेम में संवेदनशीलता अधिक रहती है। विवाह बन्धन के अभाव में प्रेयसी के प्रेम में उमंग एवं उत्साह का आधिक्य रहता है तथा माधुर्य एवं लज्जा का लावण्य भी पत्नी से अधिक ही होता है, क्योंकि मिलन के अल्प क्षण उसे स्वप्नवत् जान पड़ते हैं और यथार्थ जीवन के झंझटों से मुक्त रहने से भी उसमें भावाकुलता अधिक रहती है।

जहाँ तक कर्तव्य - निर्वाह के अन्तर का प्रश्न है, उसका कारण सामाजिक बन्धन है। सामाजिक मान्यता के अभाव में इस सम्बन्ध को प्राय: घृणा की दृष्टिसे ही देखा जाता है और यही घृणात्मकता उसके कर्तव्य मार्ग की बाधा बनकर आती है। फिर भी प्रेमतत्व की व्यापकता गम्भीरता एवं उसकी शुचिता से अनभिज्ञ समाज नारी के इस रूप को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में धार्मिक मन्त्रों से किया गया विवाह ही स्त्री-पुरुष के प्रेम - सम्बन्ध को ही पुनीत करता है।

सामाजिक विषमता के कारण हमारे समाज में कई बार एक की प्रेमिका को दूसरे का पत्नीत्व स्वीकार करना पड़ता है, किन्तु इससे किसी प्रेमिका की एकनिष्ठता में अन्तर आना आवश्यक नहीं है। कई बार पत्नी जिसे तन सौंपती है उसे द्वैत भावना के कारण मन नहीं सौंप पाती और प्रेमिका जिसे मन देती है उसे तन नहीं दे पाती।[8]

अपने स्वाभिमान के कारण प्रेमिका प्रतिदान में प्यार भी नहीं लेना चाहती । अपने प्रेमाश्रुओं पर उसे अभिमान है, चाहे अन्य कोई उनका मूल्य न समझे। नारी को अपने नयनों के नीर पर जितना विश्वास है, जितना अभिमान है उतना किसको होगा ? पुरुष भले ही स्त्री के अश्रु को दयनीयता कहे या "आँखों में पानी" परन्तु स्त्री तो उसे अपनी आग में तपने की साधना ही मानती रही है।[९]

नारी के उपर्युक्त प्रमुख रूप हर काल में पाये जायेंगे । नारी समय के अनुसार सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, धार्मिक स्थितियों में आनेवाले परिवर्तनों के अनुसार समाज में नारी के स्थान में चढ़ाव - उतार आते रहे है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक नारी के स्थान में उत्थान - पतन का पाया जाना उचित ही होगा। किंतु नारी के ये प्रमुख रूप संसार में सभी जगह पाये जायेंगे।

**********-

* संदर्भ सूची *

१.	महादेवी वर्मा	- शृंखला की कड़ियाँ	पृ.-१६
२.	श्रीराम गोयल	- प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ.	पृ.-८०
३.	डा. सावित्री डागा	- आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्यमें नारी	पृ.-१२१
४.	डा. बल्लभदास तिवारी	- हिन्दी काव्यमें नारी	पृ.-१३१
५.	डा. सावित्री डागा	- आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्यमें नारी	पृ.-१५२
६.	महादेवी वर्मा	- शृंखला की कड़ियाँ	पृ.- ४१
७.	डा. सावित्री डागा	- आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्यमें नारी	पृ.-१५७
८.	वही	- आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्यमें नारी	पृ.-२०२
९.	डा. रांगेय राघव	- आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार	पृ.- ८८